आचार्य वसुनन्दी मुनिराज विरचित 'सम्यक्त्व-सार' : एक समग्र दार्शनिक, तात्त्विक एवं व्यावहारिक अनुशीलन

लेखकः डॉ. आशीष जैन आचार्य 'शाहगढ़'
(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)
महामंत्री, प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
संयुक्त मंत्री – अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

सारांश

जैन दर्शन में मोक्षमार्ग का आरम्भ 'सम्यग्दर्शन' (सम्यक्त्व) से स्वीकार किया गया है। सम्यक्त्व केवल एक वैचारिक अवधारणा नहीं है, बल्कि वह आत्मा का एक ऐसा मूलभूत गुण है जिसके जाग्रत होने पर ही ज्ञान और चारित्र सच्चे 'सम्यक्' रूप को प्राप्त करते हैं। प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्यश्री वसुनन्दिजी मुनिराज द्वारा रचित **'सम्यक्त्व-सार' (सम्मत्त-सारो)** इस विषय का एक अत्यंत प्रामाणिक, सुव्यवस्थित और दार्शनिक प्रतिनिधि ग्रन्थ है। प्रस्तुत शोधालेख में इस लघुकाय किन्तु गम्भीर ग्रन्थ की 366 गाथाओं का दार्शनिक, तात्त्विक, मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक अनुशीलन किया गया है। इसमें सम्यक्त्व के उपमानों, लक्षण, देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप, ७ तत्त्वों व ९ पदार्थों के श्रद्धान, उत्पत्तिपरक भेदों, १० प्रकार के सम्यक्त्वों, ८ अंगों, ८ गुणों (विशेषतः पंच परावर्तन), सम्यक्त्व के भूषणों, दूषणों, अतिचारों तथा २५ दोषों (८ शंकादि दोष, ८ मद, ६ अनायतन, 3 मूढ़ता) का सुविस्तृत विवेचन किया गया है। साथ ही गुणस्थानों की अपेक्षा सम्यक्त्व के औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भेदों, उनके अधिकारी जीवों, और सम्यग्दृष्टि की परलोक गति विषयक दार्शनिक नियमों की गहन व्याख्या प्रस्तुत की गई है। भाषिक एवं साहित्यिक विश्लेषण के अन्तर्गत ग्रन्थ के छंद विन्यास, प्राकृत की सूत्रात्मकता तथा पारिभाषिक शब्दावली का शास्त्रीय अनुसन्धान किया गया है।

मुख्य शब्दः सम्यक्त्व-सार, सम्मत्त-सारो, आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज, सम्यग्दर्शन, जैन दर्शन, तत्त्वार्थ, पंच परावर्तन, सम्यक्त्व के २५ दोष, सम्यक्त्व के आठ अंग, मोक्षमार्ग।

❖ प्रस्तावना

जैन साधना पद्धति और दार्शनिक चिन्तनधारा का सुदृढ़ स्तम्भ 'सम्यग्दर्शन' या 'सम्यक्त्व' है। तत्त्वार्थसूत्र के मंगलाचरण और प्रथम सूत्र ***सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः*** तथा ***तत्त्वार्थश्रद्धानं***

सम्यग्दर्शनम् के माध्यम से यह सुस्थापित है कि सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी और बीजभूत तत्त्व है। प्राकृत जैन साहित्य में इस महनीय अवधारणा को जनसामान्य के लिए सरल , सुबोध और काव्यात्मक भाषा में समझाने के उद्देश्य से अनेक आचार्यों ने ग्रन्थ लिखे , जिनमें आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज मुनिराज विरचित **'सम्यक्त्व-सार'** अग्रगण्य है।

आचार्यश्री वसुनन्दीजी मुनिराज ने वीर निर्वाण संवत् 2539 को जैन आगम के सारभूत सिद्धान्तों को इस ग्रन्थ में समाहित किया है। ग्रन्थ की 366 गाथाएँ न केवल आगम की सूक्ष्मताओं को उद्घाटित करती हैं, बल्कि मुमुक्षु जीवों के लिए व्यावहारिक पथ -प्रदर्शक भी बनती हैं। इस ग्रन्थ का मंगलाचरण ही सर्वज्ञ अरिहन्त, सिद्ध, साधु, सरस्वती और सम्यक् धर्म की वन्दना से आरम्भ होता है, जो शाश्वत सुख की प्राप्ति का आधार है -

सव्वण्हू अरिहंता, सिद्धा, साहूणो सरस्सइ सुदम्मं।

सासयसुहं पाविदुं, संथुवेमि भत्तीए संझासु।।1।।

आचार्य देव ने सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से युक्त सिद्धों और वीतरागी अरिहन्त देवों की विशुद्धिपूर्वक वन्दना कर सम्यक्त्व-सार का प्रणयन किया है। प्रस्तुत शोधपत्र इस ग्रन्थ के समग्र और सर्वांगीण अनुशीलन को समर्पित है।

❖ **२. सम्यक्त्व का महत्त्व एवं उपमान**

सम्यक्त्व के बिना जीवन की समस्त धार्मिक क्रियाएँ शून्य के समान निष्फल मानी गई हैं। आचार्यश्री वसुनन्दीजी मुनिराज ने सम्यक्त्व की महत्ता को अनेक व्यावहारिक और लोकप्रसिद्ध उपमानों के माध्यम से सिद्ध किया है।

- **सम्यक्त्व की अनिवार्यता**

ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार:

- प्राण के बिना देह (शरीर) व्यर्थ है,
- चमक (कान्ति) के बिना मोती मूल्यहीन है,
- जल के बिना जलाशय उजाड़ है,
- मधुरता के बिना ईख (गन्ना) केवल लकड़ी है,
- गन्ध के बिना पुष्प निष्प्राण है,
- वीतरागता के बिना देव की कल्पना नहीं हो सकती,
- नैर्ग्रन्थ्य (परिग्रह-रहितता) के बिना मोक्षमार्ग असम्भव है,
- पंचपरमेष्ठी के बिना जैन शासन (जिनशासन) अस्तित्वहीन है,

- जिनदेव के बिना जिनमन्दिर केवल एक भवन है,
- अणुव्रत के बिना श्रावकधर्म सम्भव नहीं है,
- श्वासोच्छ्वास के बिना जीवन समाप्त हो जाता है,
- णमोकार मन्त्र के बिना अन्य मन्त्र निष्फल हैं, और
- देवगति के उदय के बिना कोई देव नहीं हो सकता,

ठीक उसी प्रकार **सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व) के बिना आत्मा में ज्ञान , दर्शन और चारित्र रूपी 'रत्नत्रय' की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।**

सम्यक्त्व से रहित जीव अनादिकाल से चार गतियों (देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, नरक) में दीर्घकाल तक परिभ्रमण करते हुए घोर दुःख भोगते हैं , जबकि सम्यक्त्व-सहित जीव नियम से 'धर्मात्मा' होकर अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। सम्यक्त्व मोक्षमार्ग का 'प्रथम गुण' है और मोक्ष-वृक्ष का मुख्य 'बीज' है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान , संयम, तप और ध्यान केवल बाल-तप और अज्ञान-कष्ट बनकर रह जाते हैं , वे मोक्ष के कारण नहीं बन सकते। सम्यक्त्व के बिना जीव अपनी तीव्र कषायों के शमन मात्र से नवें ग्रैवेयक तक की देवगति प्राप्त कर सकता है , किन्तु सम्यक्त्व के बिना वह वहाँ से च्युत होकर पुनः संसार में दीर्घकाल तक भटकता रहता है।

- **सम्यक्त्व के लोकप्रसिद्ध उपमान**

आचार्य देव ने गाथा १२ में सम्यग्दर्शन को वृक्ष के 'बीज' और विशाल भवन के 'आधार' (नींव) के समान बताया है। अतः आत्महित चाहने वाले भव्य पुरुषों को पुरुषार्थपूर्वक सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए। जिस भाग्यशाली जीव के हृदय में सम्यक्त्व जागृत होता है , उसके आध्यात्मिक जीवन की महिमा बताते हुए आचार्य कहते हैं:-

जस्सम्मे सम्मत्तं, घरे कप्पतरू सिरिसे कामकुंभो।

दारम्मि कामधेणू, हत्थम्मि चिंतामणि रयणं तस्स॥13॥

अर्थात् जिसके पास सम्यक्त्व है , उसके मानों घर में **कल्पवृक्ष** है, मस्तक पर **कामकुम्भ** (इच्छा पूरी करने वाला कलश) है, द्वार पर **कामधेनु** गाय खड़ी है और हाथ में **चिन्तामणि रत्न** विद्यमान है।

- ❖ **सम्यक्त्व का लक्षण एवं देव-शास्त्र-गुरु का परमार्थ स्वरूप**

आचार्यश्री वसुनन्दीजी महाराज के अनुसार , सम्यक्त्व का मूल लक्षण परमार्थभूत देव , शास्त्र और गुरु का सच्चा श्रद्धान करना है। यह श्रद्धान शंका आदि दोषों से रहित और अत्यन्त निर्मल होना चाहिए।

- **सच्चे देव**

जिनेन्द्र देव ही जैन दर्शन में सच्चे देव हैं। वे दो रूपों में प्रतिष्ठित हैं:

1. **सकल परमात्मा (अरिहन्त देव):** जो वीतरागी हैं, सर्वज्ञ हैं, हितोपदेशी हैं, जिन्होंने घातिया कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय) का नाश कर दिया है और जो अनन्त चतुष्टय (अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य) से सुशोभित हैं।
2. **निकल परमात्मा (सिद्ध भगवान):** जो सम्यक्त्व आदि आठ गुणों (अष्टगुण) से युक्त हैं, जो तीनों प्रकार के कर्मों —द्रव्यकर्म (ज्ञानावरणादि), भावकर्म (रागादि) और नौकर्म (शरीरादि)—से सर्वथा रहित हैं, और जो लोक के अग्रभाग (सिद्धालय) में अनन्तकाल के लिए विराजमान हैं।

- **निर्ग्रन्थ गुरु**

सच्चे गुरु वे दिगम्बर मुनिराज हैं जो यथाजात (जैसे जन्म के समय बालक नग्न होता है, वैसे ही वस्त्ररहित) रूप धारण करते हैं, जो पाँचों इन्द्रियों के विषयों, कषायों और गृहस्थी के आरम्भ-परिग्रह से सर्वथा रहित हैं, जो २८ मूलगुणों और उत्तरगुणों से युक्त हैं और जो निरन्तर ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय और तप में लीन रहते हैं।

- **सच्चे शास्त्र (जिनागम) और धर्म**

- **शास्त्र (आगम):** जो आप्त (जिनेन्द्र देव) द्वारा उपदिष्ट हैं, गणधर देवों द्वारा संगृहीत (सूत्रबद्ध) हैं और पूर्वाचार्यों या मुनियों द्वारा रचित हैं, वे ही परमार्थ से सच्चे शास्त्र हैं।
- **धर्म:** अहिंसा ही मूल धर्म है। इसके साथ ही उत्तम क्षमादि दस लक्षण धर्म, रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) धर्म और निश्चय से **आत्मा का शुद्ध स्वभाव ही वास्तविक धर्म है**। जीवादि सात तत्त्वों और पुण्य-पाप सहित नौ पदार्थों का यथार्थ श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व है।

❖ ४. सम्यक्त्व के विविध वर्गीकरण

ग्रन्थ में सम्यक्त्व को समझने के लिए तीन प्रमुख वर्गीकरण प्रस्तुत किए गए हैं:

- **उत्पत्ति की अपेक्षा**

उत्पत्ति के आधार पर सम्यक्त्व के दो भेद हैं:-

1. **निसर्गज सम्यक्त्व :** जो बिना किसी बाह्य उपदेश या वर्तमान काल में साक्षात् उपदेश सुने स्वतः ही पूर्वजन्म के संस्कारों, जातिस्मरण आदि आन्तरिक कारणों से उत्पन्न होता है।
2. **अधिगमज सम्यक्त्व :** जो जिनेन्द्र देव , निर्ग्रन्थ गुरु के प्रत्यक्ष उपदेश (देशना) आदि बाह्य निमित्तों से प्राप्त होता है।

- **मार्गणा और विषय की अपेक्षा १० भेद**

ग्रन्थ की गाथा २८ में सम्यक्त्व के १० विशिष्ट रूपों का नामोल्लेख किया गया है :-

1. **आज्ञा सम्यक्त्व :-** दर्शन मोह के उपशम होने पर जिनेन्द्र देव की आज्ञा मानकर तत्त्वों पर अकाट्य श्रद्धान करना।
2. **मार्ग सम्यक्त्व :-** परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ मुनियों और वीतराग मोक्षमार्ग को देखकर या सुनकर जो तत्त्व श्रद्धान होता है।
3. **उपदेश सम्यक्त्व :-** तीर्थंकर देवों तथा 63 शलाका पुरुषों के चरित्र और उपदेश को सुनकर होने वाला श्रद्धान।
4. **सूत्र सम्यक्त्व:-** मुनियों के आचरण का प्रतिपादन करने वाले आचारसूत्रों (आचारांगादि) के श्रवण से उत्पन्न श्रद्धान।
5. **बीज सम्यक्त्व:-** गहन और दुर्लभ जीवादि पदार्थों के मूल 'बीज' पदों (संक्षिप्त बीज मन्त्रों या सूत्रों) को ग्रहण कर उत्पन्न होने वाला श्रद्धान।
6. **संक्षेप सम्यक्त्व:-** जीवादि पदार्थों के स्वरूप को अत्यन्त संक्षेप में जानकर होने वाला श्रद्धान।
7. **विस्तार सम्यक्त्व :-** आचारांगादि द्वादशांग (१२ अंगों) के विस्तृत स्वाध्याय और श्रवण से होने वाला गहरा श्रद्धान।
8. **अर्थ सम्यक्त्व:-** अंगबाह्य ग्रन्थों को पढ़े बिना , केवल उनके अर्थमात्र को ग्रहण करने से होने वाला श्रद्धान।
9. **अवगाढ़ सम्यक्त्व :-** अंग और अंगबाह्य दोनों प्रकार के समस्त श्रुतज्ञान का गहराई से अवगाहन (अध्ययन) कर होने वाला तत्त्व श्रद्धान।
10. **परमावगाढ़ सम्यक्त्व:** केवलज्ञान के द्वारा साक्षात् देखे गए पदार्थों के विषय में उत्पन्न होने वाली अतीन्द्रिय रुचि; यह सम्यक्त्व का सबसे विशुद्ध रूप है।

- **निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा**

- **व्यवहार (सराग) सम्यक्त्व:-** परमार्थ देव , शास्त्र और गुरु का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्त्व है ।यह चौथे (अविरत सम्यग्दृष्टि) से लेकर सातवें (अप्रमत्त संयत) गुणस्थान तक सराग अवस्था में पाया जाता है।

- **निश्चय (वीतराग) सम्यक्त्वः-** आत्मा की शुद्धता , आत्मरुचि और शुद्धात्मा का अनुभव ही निश्चय सम्यक्त्व है। इसमें यह दृढ़ श्रद्धान होता है कि एकमात्र 'शुद्धात्मा ही उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है'। यह सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान से लेकर १४वें अयोगकेवली गुणस्थान तक नियम से विद्यमान रहता है।

❖ ५. सम्यक्त्व के आठ अंग

जिस प्रकार अंगों के बिना मनुष्य का शरीर विकृत और अक्षम होता है , उसी प्रकार अंगों से रहित सम्यक्त्व निर्बल होता है और कर्मक्षय करने में असमर्थ होता है। अतः सम्यग्दृष्टि को सदैव सम्यक्त्व के आठ अंगों का पोषण करना चाहिए :-

1. निःशंकित अंग

सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और पदार्थों के यथार्थ स्वरूप में कभी शंका न करना निःशंकित अंग है। जिनेन्द्र देव के वचनों पर यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि यह तत्त्व स्वरूप ऐसा ही है , अन्य प्रकार से नहीं हो सकता पर्वत के समान इस अचल श्रद्धान को निःशंकित अंग कहते हैं।

2. निःकांक्षित अंग

सांसारिक और इन्द्रियजनित सुखों की इच्छा न करना निःकांक्षित अंग है। सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती, इन्द्र, धरणेन्द्र आदि के वैभव को अपने पुण्य के अस्थायी फल के रूप में देखता है और जानता है कि संसारी सुख वास्तव में सुखाभास मात्र हैं , जो अंततः दुःखों का कारण बनते हैं इसलिए वह आत्मपद के अतिरिक्त किसी अन्य भौतिक वैभव की आकांक्षा नहीं करता।

3. निर्विचिकित्सा अंग

औदारिक शरीर के मलिन और अशुचि स्वरूप को जानने के बावजूद , रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) से युक्त मुनियों और साधुओं के प्रति ग्लानि या घृणा न करना निर्विचिकित्सा अंग है। शरीर तो स्वभाव से ही सात धातुओं (रक्त, मांस आदि) की अपवित्र गठरी है और इसमें 56,899,584 **(पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी)** रोग विद्यमान हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि शरीर के बाह्य मल को गौण कर आत्मा के भीतर चमकते रत्नत्रय के प्रति आदरभाव रखता है।

4. अमूढ़दृष्टि अंग

संसार में अनादिकाल से फैले मिथ्या तत्त्वों , कुदेवों, कुगुरुओं और कुशास्त्रों के प्रति मोहित न होना अमूढ़दृष्टि अंग है। जो अज्ञानी जीव वीतराग जिनशासन को छोड़कर कुपथ पर चलते हैं या मिथ्या क्रियाओं को धर्म मानते हैं , वे मूढ़दृष्टि हैं। सम्यग्दृष्टि केवल सच्चे आप्त , आगम और गुरु पर ही विवेकपूर्वक श्रद्धा रखता है।

5. उपगूहन अंग

यदि प्रमाद, अज्ञान या कर्मावरण के उदय से किसी साधर्मी (धार्मिक भाई) या मुनि के चारित्र में कोई दोष उत्पन्न हो जाए , तो उसे समाज में प्रकट न करना बल्कि उसे छिपाना उपगूहन अंग है। जिस प्रकार माता अपने पुत्र -पुत्री के दोषों को छिपाकर उनकी रक्षा करती है , वैसे ही धर्मात्मा जिनशासन की मर्यादा की रक्षा के लिए दूसरों के दोषों को ढकता है। जो दूसरों के दोषों का प्रचार करता है, वह जिनशासन की जड़ें काटता है।

6. स्थितिकरण अंग

अज्ञान, प्रमाद या कर्म के उदय से यदि कोई साधर्मी मोक्षमार्ग से विचलित होने लगे या गिर रहा हो, तो उसे डाँटने-फटकारने के बजाय अत्यन्त वात्सल्य और प्रेमपूर्वक पुनः धर्म में स्थिर करना स्थितिकरण अंग है। जो गिरे हुए धार्मिक भाई की उपेक्षा करता है या उसे और गिराता है , वह मित्र नहीं बल्कि महाशत्रु है।

7. वात्सल्य अंग

धार्मिक जनों , मुनियों और साधर्मियों के प्रति निष्काम , निश्छल और निःस्वार्थ स्नेह रखना वात्सल्य अंग है। इसके दो उत्कृष्ट उदाहरण ग्रन्थ में मिलते हैं:-

1. **गाय का बछड़े के प्रति प्रेम :-** जिस प्रकार गाय अपने नवजात बछड़े से बिना किसी स्वार्थ के केवल नैसर्गिक प्रेम करती है, वैसा ही प्रेम साधर्मियों में होना चाहिए।
2. **दूध और शक्कर का सम्बन्ध :-** जिस प्रकार दूध और शक्कर मिलकर एक हो जाते हैं , वैसे ही सम्यग्दृष्टि साधर्मियों के साथ एकाकार हो जाता है।

साधर्मियों का तिरस्कार करना वास्तव में साक्षात् धर्म का तिरस्कार करना है।

8. प्रभावना अंग

अपने आचरण , ज्ञान, तप और भक्ति के द्वारा जिनशासन की महिमा को लोक में फैलाना प्रभावना अंग है। प्रभावना जिनशासन रूपी वृक्ष को सींचने वाले जल के समान है। गृहस्थों को अपनी

शक्ति के अनुसार जिन-पूजा, सम्यक् दान, मुनिसेवा और तीर्थयात्रा आदि के माध्यम से तथा मुनियों को ज्ञान, ध्यान और तप के द्वारा धर्म की प्रभावना करनी चाहिए।

❖ ६. सराग सम्यक्त्व के लक्षण एवं आठ विशिष्ट गुण

आचार्यश्री वसुनन्दीजी महाराज ने सराग सम्यक्त्व के चार लक्षणों तथा आध्यात्मिक विकास के आठ गुणों का अद्भुत दार्शनिक विवेचन किया है।

- **सराग सम्यक्त्व के चार लक्षण**

1. **प्रशमः-** अनन्तानुबन्धी आदि चार कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) का शमन करना। तीव्र क्रोध और मान के उदय में सम्यग्दर्शन वैसे ही नहीं टिक सकता जैसे शिला पर बीज अंकुरित नहीं हो सकता।
2. **संवेगः-** संसार, शरीर और कषायों के चक्र से भयभीत होकर मोक्ष के प्रति तीव्र अभिलाषा रखना।
3. **अनुकम्पाः-** संसार के समस्त प्राणियों के प्रति दया और करुणा का भाव रखना। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब और चलते हुए पुरुष के साथ उसकी छाया होती है , वैसे ही सम्यग्दृष्टि के साथ दयाभाव सदैव रहता है।
4. **आस्तिक्यः-** जीवादि छह द्रव्यों और उनके स्वभाव पर दृढ़ श्रद्धान रखना तथा स्वतः के अस्तित्व एवं परलोक को स्वीकार करना।

- **सम्यक्त्व के आठ गुण और 'पंच परावर्तन'**

सम्यक्त्व के आठ गुणों में **निर्वेद, निन्दा, प्रशम, अनुकम्पा, संवेग, गर्हा, वात्सल्य और भक्ति** शामिल हैं। इनमें 'निर्वेद' (संसार से वैराग्य) को पुष्ट करने के लिए आचार्य देव ने आगम के अत्यंत क्लिष्ट विषय **'पंच परावर्तन'** का सुविस्तृत और वैज्ञानिक वर्णन किया है :-

परावर्तन का नाम	संक्षिप्त दार्शनिक स्वरूप और आगम विवेचन	संदर्भ गाथा
1. द्रव्य परावर्तन	इसमें नौकर्म और कर्म वर्गणाओं के समस्त पुद्गलों को जीव द्वारा उसी क्रम और भावों से अनन्त बार ग्रहण कर छोड़ने की प्रक्रिया का वर्णन है।	गाथा 121-123
2. क्षेत्र परावर्तन	तीन लोक (*४* घनराजू) के प्रत्येक आकाश प्रदेश पर जीव का अनन्त बार जन्म और मरण लेना क्षेत्र परावर्तन कहलाता है (स्वक्षेत्र और परक्षेत्र भेद सहित)।	गाथा 124

3. काल परावर्तन	उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के प्रत्येक समय (Time-unit) में जीव का क्रमशः जन्म और मरण पूरा होना काल परावर्तन कहलाता है।	गाथा 125
4. भव परावर्तन	चारों गतियों (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव) में उनकी जघन्य आयु से लेकर उत्कृष्ट आयु (जैसे देवों में *१ सागर) के प्रत्येक समय को जन्म-मरण पूर्वक पूरा करना।	गाथा 126-128
5. भाव परावर्तन	जीव के असंख्यात लोक प्रमाण योगस्थानों, अनुभागबन्ध-अध्यवसायस्थानों और कषायस्थानों के समस्त विकल्पों में परिभ्रमण करने की चरम सीमा।	गाथा 129

सम्यग्दृष्टि जीव इस भीषण 'पंच परावर्तन' के दुःखों का विचार कर संसार से विरक्त (निर्वेदी) होता है और आत्मसुख का आलम्बन लेता है।

❖ सम्यक्त्व के भूषण, दूषण, अतिचार एवं २५ दोष

सम्यक्त्व रूपी अमूल्य रत्न को सुरक्षित रखने के लिए उसके दोषों और अतिचारों को जानना अनिवार्य है।

- **सम्यक्त्व के २५ दोष**

सम्यक्त्व को मलिन करने वाले २५ मुख्य दोष निम्नलिखित हैं:-

1. **८ शंकादि दोषः-** जिनेन्द्र के वचनों में शंका करना , सांसारिक सुखों की कांक्षा (इच्छा) करना, मुनियों के मलिन शरीर से जुगुप्सा (घृणा) करना, अमूढ़दृष्टि न रखना , उपगूहन न करना , स्थितिकरण न करना, वात्सल्य न रखना और प्रभावना न करना।
2. **८ मदः-** ज्ञान का मद (दूसरों को तुच्छ समझना), पूजा-प्रतिष्ठा का मद , उत्तम जाति का मद (माता का पक्ष), उच्च कुल का मद (पिता का पक्ष), बल का मद , ऋद्धि/वैभव का मद , तप का मद और शरीर के रूप-सौन्दर्य का मद।
3. **६ अनायतनः-** कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र तथा इनके सेवकों /पुजारियों का आदर , प्रशंसा और संगति करना।
4. **3 मूढ़ताएँ**

    1. ***देव मूढ़ताः-*** राग-द्वेष युक्त देवों को पूजना।

    2. ***लोक मूढ़ताः-*** नदी में स्नान करने से पाप धोना , पर्वत से गिरकर प्राण देना आदि अन्धविश्वास।

3. ***गुरु मूढ़ताः***– परिग्रह सहित और कषाय युक्त पाखण्डी गुरुओं की वन्दना करना।

- **भूषण, दूषण और अतिचार**
- **५ भूषण (आभूषण)ः**– निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा , निर्मल भाव रखना , प्रसन्न मुख रहना , निरन्तर तत्त्वचिन्तन करना और परोपकार में संलग्न रहना।
- **५ दूषण (दोष)ः**– पूज्य पुरुषों का अविनय , ईर्ष्या भाव, अनर्थकारी वचनालाप, अहिंसा का लोप और हित की उपेक्षा करना।
- **५ अतिचारः**– शंका, कांक्षा, विचिकित्सा (जुगुप्सा), अन्यदृष्टि-प्रशंसा (मन से अन्य मत की प्रशंसा करना), अन्यदृष्टि-संस्तव (वचन से अन्य मत की स्तुति करना)। ये अतिचार केवल 'क्षायोपशमिक' सम्यक्त्व में ही सम्भव हैं , औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व सर्वथा निष्कलंक होते हैं।
- **सम्यक्त्व के भेद, गुणस्थान और गमन का दार्शनिक विश्लेषण**

ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में आचार्यश्री वसुनन्दीजी महाराज ने सम्यक्त्व के गुणस्थान -सम्बन्धी नियमों का गहन दार्शनिक प्रतिपादन किया है।

- **मार्गणा-अपेक्षा सम्यक्त्व के ६ भेद**

मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व), औपशमिक, क्षायोपशमिक (वेदक), और क्षायिक सम्यक्त्व।

- **औपशमिक सम्यक्त्वः** अनन्तानुबन्धी कषाय ४ और दर्शनमोहनीय की प्रकृतियों के उपशम से होता है। इसके दो भेद हैं :- **प्रथमोपशम** (जो मिथ्यात्व गुणस्थान से चौथे आदि गुणस्थान में जाते समय होता है) और **द्वितीयोपशम** (जो क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि मुनिराज उपशम श्रेणी चढ़ते समय प्राप्त करते हैं)।
- **क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्वः**– दर्शनमोहनीय की सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से होने वाला श्रद्धान। यह 'चल, मलिन और अगाढ़' दोषों से युक्त होता है।

1. ***चल दोषः***– कभी इस मन्दिर को अपना और उस मन्दिर को दूसरे का मानना।

2. ***मलिन दोषः***– शंका आदि अतिचारों से मलीनता।

3. अगाढ़ दोष :– ऐसी संकीर्ण मान्यता रखना कि पार्श्वनाथ ही संकट टालते हैं , शान्तिनाथ ही शान्ति करते हैं , पद्मप्रभ भूतबाधा हरते हैं और नेमिनाथ राहु दोष दूर करते हैं।

- **क्षायिक सम्यक्त्वः-** सात प्रकृतियों (दर्शनमोहनीय 3 + अनन्तानुबन्धी 4) के सर्वथा क्षय से उत्पन्न होने वाला सुदृढ़ सम्यक्त्व, जो सुमेरु पर्वत के समान अचल और निष्कम्प होता है। यह केवल केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में कर्मभूमि के मनुष्य द्वारा ही आरम्भ किया जा सकता है।
- **परलोक गमन के अकाट्य नियम**

सम्यग्दृष्टि जीव की मृत्यु और पुनर्जन्म के विषय में जैन सिद्धान्त अत्यन्त वैज्ञानिक हैं:-

1. सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी नरक , तिर्यञ्च, विकलेन्द्रिय (दो-तीन-चार इन्द्रिय), स्थावर (एकेंद्रिय), असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, नपुंसक और स्त्री के रूप में उत्पन्न नहीं होता ।
2. वह भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और नीच देवों (किल्विष आदि) में नियम से उत्पन्न नहीं होता। वह केवल उत्कृष्ट **वैमानिक देवों** में ही जन्म लेता है।
3. यदि किसी जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त करने से पूर्व ही नरक या तिर्यञ्च आयु का बन्ध कर लिया हो, तो वह सम्यक्त्व के प्रभाव से नरक की केवल प्रथम पृथ्वी में ही जाता है , अथवा उत्कृष्ट भोगभूमि में उत्पन्न होता है।
4. सम्यग्दृष्टि मनुष्य सदा मदन -रहित होकर उच्च कुल , उत्तम जाति, महान वैभव, बुद्धि और सर्वप्रिय यश प्राप्त करता है।

❖ **भाषिक एवं साहित्यिक सौन्दर्य**

'सम्यक्त्व-सार' केवल एक दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है , बल्कि यह प्राकृत काव्य -कला का एक अनुपम उदाहरण है।

- **छंद विन्यास एवं भाषा**

समग्र ग्रन्थ 'गाथा' छंद में रचित है। प्राकृत भाषा की सरलता और गेयता ने शुष्क दार्शनिक सिद्धान्तों को भी मधुर और सरस बना दिया है। प्राकृत की शौरसेनी शैली का स्पष्ट प्रभाव ग्रन्थ में दिखाई देता है।

- **पारिभाषिक शब्दावली**

ग्रन्थ में प्रयुक्त महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों को निम्न तालिका में वर्गीकृत किया गया है:-

आपके दिए हुए पाठ को **तालिका के रूप में व्यवस्थित** कर रहा हूँ। मूल प्राकृत शब्दों को यथासंभव शुद्ध देवनागरी में रखते हुए, चारों स्तम्भ स्पष्ट किए गए हैं।

प्राकृत शब्द (मूल)	संस्कृत रूपान्तर	हिन्दी पारिभाषिक अर्थ	दार्शनिक महत्त्व
सम्मत्त	सम्यक्त्व	सच्चा श्रद्धान / सम्यग्दर्शन	मोक्षमार्ग का मूल आधार।
अरिहंत	अरिहन्त	घातिया कर्म नाशक देव	सकल परमात्मा स्वरूप।
णिग्गंठ	निर्ग्रन्थ	परिग्रह और कषाय रहित गुरु	मोक्षमार्ग के सच्चे साधक।
णिसग्गज	निसर्गज	स्वाभाविक रूप से उत्पन्न	बिना बाह्य उपदेश के जागृत।
अहिगमज	अधिगमज	उपदेशपूर्वक उत्पन्न	देशनापूर्वक प्राप्त सम्यक्त्व।
अवगाढ-सम्मत्त	अवगाढ़-सम्यक्त्व	शास्त्रों के गहन ज्ञानजनित	द्वादशांग के गूढ़ चिन्तन से प्राप्त।
वच्छल्ल	वात्सल्य	निश्छल स्नेह	साधर्मियों के प्रति अगाध प्रेम।
ठिदिकरण	स्थितिकरण	पुनः धर्म में स्थापित करना	विचलित होते साधर्मी की रक्ष।
उवगूहण	उपगूहन	दोषों को ढकना / गुण बढ़ाना	धर्म की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखना।
पसम	प्रशम	कषायों का उपशम	कषायों के अभाव में शान्त परिणाम।
संवेग	संवेग	संसारभीरुता	मोक्ष के प्रति निरन्तर आकर्षण।

❖ निष्कर्ष

आचार्य वसुनन्दी मुनिराज विरचित 'सम्यक्त्व-सार' प्राकृत जैन साहित्य का एक देदीप्यमान नक्षत्र है। 366 गाथाओं के इस संक्षिप्त कलेवर में सम्यक्त्व का जैसा सूक्ष्म , बहुआयामी और दार्शनिक विश्लेषण मिलता है , वह अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रन्थकार ने सम्यक्त्व को केवल एक शुष्क तात्त्विक सिद्धान्त न रखकर उसके व्यावहारिक अंगों , गुणों और 25 दोषों के विवेचन द्वारा साधक के लिए एक दर्पण प्रस्तुत किया है। 'पंच परावर्तन' की व्याख्या के माध्यम से संसारी दुःखों का जो चित्र खींचा गया है, वह निश्चय ही मुमुक्षु के हृदय में निर्वेद (वैराग्य) का बीजारोपण करने में समर्थ है। अंत में देव-गति और सम्यग्दृष्टि के परलोक सम्बन्धी आगम नियमों का प्रतिपादन कर ग्रन्थकार ने सिद्ध किया है कि सम्यक्त्व ही इस जीव का परम शरण है। यह ग्रन्थ आध्यात्मिक शुद्धि , समाज-शास्त्रीय वात्सल्य और वैयक्तिक चारित्रिक विकास का महाश्रोत है।